आलेख

साहित्य समाज और संस्कृति

श्यामल बिहारी महतो

कहते है साहित्य समाज का दर्पण होता है।समाज में घटित घटनाओं का साहित्य पर सीधा सीधा असर पड़ता है ।कारण समाज में घटित घटनाओं पर जब कोई लेखक कलम चलाता है तो हर बुद्धिजीवी उस पर चिंतन मनन करते हैं। वांछित अवांछित पर अपनी कीमती राय मशविरा देते हैं । तब कलम के सिपाही उस पर लिख कर समाज को एक नई दिशा देने का काम करते हैं । वही साहित्य आज धीरे-धीरे हाशिये पर आ गया है । कारण समय के साथ साथ बहुत सारी स्थितियां बदलती जा रही है । विज्ञान और सूचना क्रान्ति के तेज आक्रमण से समाज का चेहरा भी बदला है ।समाज से सामाजिकता का पतन लगातार जारी है। आपसी रिश्ते दरक रहे हैं या फिर कलंकित हो रहे हैं । ऐसी-ऐसी घटनाएं दिन प्रतिदिन घट रही है जिसे स्वीकारने में समाज की सासें फूल रही है । विकृतियों ने समाज को पतन की ओर धकेल दिया है। समाज और सांस्कृतिक परम्परा को जितनी क्षति पिछले डेढ़ दो दशकों में हुई है, उससे कोई बच नहीं सका है और जब इतना सब कुछ घट रहा हो तो फिर यह कैसे संभव हो कि साहित्य और साहित्यकारों पर इसकी छाया न पड़े ।

किसी भी समाज और संस्कृति के निर्माण में साहित्य की अहम भूमिका होती है, साहित्य और संस्कृति का वातावरण हमारे समाज को उन्नतशील बनाता है । एक जमाना था जब बुक-स्टालों पर धर्मयुग, सारिका,हंस,कथादेश, कहानीकार और कथन तथा वर्तमान साहित्य जैसी पत्रिकाएं धड़ल्ले से बिकती थी और पाठकों को अगले अंक की प्रतीक्षा रहती थी जैसे पत्रिका की नहीं अपनी प्रेमिका का आने का इंतजार करता हो । अब तो स्थिति एक दम से उलट है,आज साहित्यिक पत्रिकाओं की जगह अपराध और सेक्स पत्रिकाओं ने अपना कब्जा जमा लिया है । साहित्य की पुस्तकें तो बाजार में , बुक-स्टालों में मिलना ही बंद हो गया है ।

यह सत्य है कि बड़ी बड़ी पत्रिकाएं भी बंद हो चुकी है। लेकिन यह भी एक सच है कि इतने संकटों के बावजूद भी लघु पत्रिकाओं ने हार नहीं मानी है और हर छोटे बड़े शहरों से निकलती रही हैं जो एक सुखद आश्चर्य पैदा करता है । देश में हिन्दी की लघु पत्र- पत्रिकाओं का अभाव नहीं दिखता है पर यह भी सच है कि आर्थिक संसाधनों के अभाव में लघु पत्रिकाएं भी पाठकों तक नहीं पहुंच पाती है । अच्छी पुस्तकों की स्थिति तो और भी सोचनीय है । प्रकाशक भी नहीं

Scanned with OKEN Scanner

चाहते हैं कि पुस्तकें पाठकों तक पहुंचे । कीमत इतनी रख दी जाती है कि आम पाठक के खरीद से बाहर हो जाती है। परिणाम जो पुस्तकें पाठकों तक पहुंचे वह पुस्तकालयों में पहुंच जाती है जहां मोटी कमिशन का कारोबार चलता है, इसी बहाने कूड़ा-करकट और कचरा साहित्य भी ऐसी संस्थाओं में ठिकाने लगा दिया जाता है। हताश पुस्तक प्रेमी बाजारू पुस्तकों की जाल में जा फंसते हैं। इसका दुष्परिणाम सीधा हमारे समाज और संस्कृति पर पड़ता है । इस स्थिति में लघु पत्रिकाएं गंभीर पाठकों के लिए निराशा में आशा की किरण लेकर उसके बीच आती है । कहते है अच्छी पुस्तकें व्यक्ति, समाज और देश की स्थिति को बदलने की शक्ति रखती है । फ्रांस की राज्य क्रांति और सोवियत रूस की क्रांति इसका गवाह है । आज विज्ञान ने काफी प्रगति कर ली है लेकिन इससे कहीं समाजिक क्रांति हुई हो, ऐसा उदाहरण देखने को नहीं मिलता । वैसा लेखन भी अब सामने नहीं आ पा रहा है जिसको इस समाज से सरोकार हो, हमारी रोज़ मर्रा के जीवन में सब बातें अहम स्थान रखती है लेकिन उनमें पुस्तकों का कोई स्थान नहीं बचा है जो होना चाहिए था । पुस्तक सबसे उपेक्षित स्थिति में है। आज हम पुस्तकें,पत्र पत्रिकाओं को खरीद कर पढ़ना नहीं चाहते हैं, आज के लेखक कवि भी सिर्फ अपनी रचनाओं को छपते देखना चाहते हैं पर जब पत्रिकाओं के आर्थिक सहयोग की बात हो तो साहूकार बन जाते हैं । रचना भी दूं और पैसे भी ? उनका सबसे बड़ा सवाल होता है । जो वाजिब तो लगता है पर व्यवहारिक नहीं । यही कारण है कि लेखकों से संवाद सूत्र जोड़ना अब गौण हो चुका है । इस कारण पुस्तक और पाठक के बीच की दूरी भी बढ़ती जा रही है । पुस्तकों का महंगा होना भी इसका एक महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। ऐसे में लघु पत्रिकाएं सेतु की तरह काम कर रही है । पत्रिकाएं किसी हद तक पाठकों की रुचि को परिष्कृत करती रहती है जिनसे उसे समाजिक समरसता को समझने में सहायता मिलती है ।

एक समय था जब पाठक और लेखन के बीच बराबर संवाद बना रहता था । लेखक पाठक के पत्रों को अपनी रचना का आधार मानता था । वहीं पाठक लेखक से सीधे अपने मन की बात कह समय तथा समाज को समझने का उपक्रम करता था । आज स्थिति उलट हो गई है । आज साहित्य में संवादहीनता की स्थिति उत्पन्न हो गई है और इसके लिए प्रकाशक और स्वयं लेखक जिम्मेदार है । क्योंकि आज पुस्तकें बहुत महंगी और पाठकों की क्रय शक्ति से बाहर हो गई हैं, वर्तमान में पुस्तकें पाठकों के लिए नहीं बल्कि पुस्तकालयों को ध्यान में रखकर लिखा और छपा करती है । अतः प्रकाशक ने अपने फायदे के लिए पुस्तकों को पाठकों से दूर कर दिया है, ऊपर से साहित्य में अश्लीलता बढ़ती जा रही है जो सस्ता प्रचार पाने का हथकंडा मात्र है, स्वस्थ्य साहित्य ही अंततः साहित्य में और समाज में अपनी स्थायी जगह बना पाता है और आगे भी यह रिश्ता कायम रहेगा । इस उम्मीद के साथ.....!

Scanned with OKEN Scanner